International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 4, Issue 07, July 2017
Website- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

भारतीय इतिहास के विस्मृत नायक जयपाल

डॉ. सोमेश कुमार सिंह
व्याख्यता इतिहास
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह
राजकीय महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

गुप्तवंशी सम्राटों के शासनकाल में उत्तर–पश्चिमी भारत में सहानुसाहि वंश के राजाओं का राज्य था जो सम्भवंतः गुप्तों की अधीनता स्वीकार करते थे। गुप्तों की शक्ति क्षीण होने पर ये शाहीराजा स्वतंत्र हो गए। धर्म व संस्कृति की दृष्टि से भारतीय इतिहास में इनका विशेश महत्व है। धर्म संस्कृति की दृष्टि से ये राजा पूर्णतः भारतीय थे। अलबेरूनी इन शासकों को हिन्दू तुर्क कहा है। नवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब गजनी पर तुर्को का अधिकार हो गया था उस समय इस हिन्दुशाही वंश पर जयपाल नामक राजा राज्य कर था। स्वात की घाटी से उसका एक शिलालेख भी मिला है जिसमें उसे परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री जयपाल देव कहा गया है। गजनी की सीमा से लगे हिन्दुशाही राज्य की सीमा उस समय लमाान से चिनाव नदी तक फैली हुई थी।

जयपाल भारतीय इतिहास के विस्मृत नायकों में से एक है। जयपाल भारत के इतिहास के उन गुमनाम शासकों में थे, जिन्होने सीमा पार से होने वाले तुर्की आक्रमणों का डटकर मुकाबला किया। यह कहना गलत नहीं होगा कि जयपाल अपने युग के एक मात्र ऐसे शासक थे। जिन्होने लम्बे समय तक आक्रमणकारियों को भारतीय सीमाओं में नहीं घुसने दिया। सम्भवतः जयपाल भारत के अपने युग के प्रथम शासक जिन्होने तुर्की आक्रांता सुबुक्तगीन के विरूद्ध संयुक्त हिन्दु मोर्चा बनाने का प्रयास किया था। तुर्की खतरें को हमेशा भारत से मिटाने के लिये इस शासक ने अपना सर्वस्य न्यौछावर कर दिया।

संकेत शब्द– हिन्दूशाही, जयपाल, सुबुक्तगीन, कुतबी, युद्ध परपंरा।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

हर्षवर्द्धन को मृत्यु के बाद भारत में छोटे बड़े कई हिन्दु राज्य दिखाई देते हैं। इसी काल में अफगानिस्तान में एक नये हिदू वंश की स्थापना हुई जो कि इतिहास में हिन्दूशाही वंश के नाम से जाना जाता है। इस वंश में इस क्षेत्र में 150 वर्षों तक शासन किया। इस वंश के सामने नवोदित तुर्की अक्रमणों का खतरा था। अपने सम्पूर्ण शासन काल में इस वंश ने मुस्लिम आक्रमणों का डटकर मुकाबला किया। यह हिंदू राज सीमान्त पर स्थित वह राज्य था जिसे मुस्लिम आक्रमणों का सर्वप्रथम शिकार बनना पड़ा। विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध उस भारतीय राजवंश क प्रतिरोध के बारे इतिहासकारो ने अधिक नहीं लिखा है। अब तक भारतीय इतिहास में इस राजवंश की मात्र इतनी उपयोगिता थी कि इसने गजनी से होकर आने वाले आक्रमणों का सामना किया। इस राजवंश को इतिहास में वह स्थान न मिल सका जिसका यह अधिकारी था। दुर्भाग्य से इतिहासकारों ने आकान्ताओं के बारे में जितना लिखा उसकी तुलना में इस राजवंश के बारे में बहुत कम जानकारी हमारे विद्यार्थियों को दी गई।

इस हिन्दूशाही राजवंश का संस्थापक कल्लर अथवा लल्लिय को माना जाता है जिन्होंने तुर्की शाहीवंश के आखिरी शासक लगतुर्मान को गद्दी से हटाकर काबुल पर नये हिन्दूशाही वंश की स्थापना की।[1] परंतु इस नये राजवंश की सत्ता अधिक समय तक काबुल पर नहीं रह सकी। कल्लर के शासनकाल में ही याकुत बिन लईस नामक आक्रमणकारी ने 870 ई० के लगभग काबुल को कलर से छीन लिया।[2] काबुल के छिन जाने पर कल्लर ने अपनी नयी राजधानी उद्‌भण्डपुर नामक स्थान पर स्थापित की।[3] कल्लर की मृत्यु की निश्चित तिथि की हमें जानकारी नहीं है परन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनका पुत्र कमलूक जिसे कहीं–कहीं तोरमान भी कहा गया है शासक बना। कल्लर के समय मे काबुल में सफ्फारी वंश का अमरू लईस (879ई. –901 ई.) का शासन था।[4] इसी अमरु लईस ने फर्दगान नामक सेनापति को जाबुललिस्तान का सुबेदार बनाया। फर्दगान ही वह सेनापति था जिसने हिन्दूशाही वंश के अधीनस्त राज्य सकाबन्द पर आक्रमण करके हिन्दू मन्दिरों को लूटा था। सिंध के बाद सम्भवतः हिंदू मन्दिरों पर यह पहला आक्रमण था। कमलूक को जब इस आक्रमण की जानकारी मिली तो उसे उसने रोकने का प्रयास किया परन्तु वह सफल न हो सका क्योंकि आकान्ता को अन्य मुस्लिम राज्यों की मदद प्राप्त हो गयी किन्तु कमलूक को किसी भी हिन्दूराजा की मदद नहीं मिली। परिणामस्वरूप कमलूक को पीछे लौटना पड़ा।[5] कमलूक की मृत्यु के बाद हिन्दूशाही वंश की गद्दी पर भीम बैठे जिनके बारे में हमें कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती, परन्तु यह कहा जाता है कि भीम ने लोहारवंश के शासक सिंहराज से अपनी पुत्री का विवाह किया था। जिससे दिद्दा नामक कन्या का जन्म हुआ था। दिद्दा का विवाह क्षेमेन्द्र गुप्त से हुआ था।[6] भीम के बाद जयपाल गद्दी पर बैठे। जयपाल का भीम के साथ क्या रिश्ता था यह स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः भीम ने स्वयं जयपाल को अपना उत्तराधिकारी बनाया हो।[7] जयपाल ने 965 ई. से 1001 ई. तक शासन किया। इनका राज्य लगभान

से काश्मीर तक तथा सरहिन्द से मुल्तान तक विस्तृत था।[8] पेशावर इनके राज्य का केन्द्र था। बारीकोट शिलालेख में उनकी उपाधि परम भट्टारक महाराजाधिराज जयपाल देव दी गई है।[9] जयपाल हिन्दूशाही वंश के वे शासक थे जिन्होंने गजनी से होने वाले तुर्की आक्रमणों का निरन्तर वीरतापूर्वक सामना किया। इनके समय भारत पर लगातार तुर्की आक्रमण हुए। काबुल व गजनी इन आक्रमणों का केन्द्र थे। 933 ई. में अलप्तगीन गजनी का शासक बन चुका था तथा उसने स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली थी।[10] 963 ई. में अल्पत्गीन की मृत्यु हो गई। सत्ता संघर्ष में अल्पत्गीन का पुत्र इसहाक गजनी की गद्दी पर बैठा परन्तु गजनी के अपदस्त शासक लवीक ने गजनी पर पुनः अधिकार कर लिया।[11] हो सकता है लवीक को इस आक्रमण में जयपाल की मदद मिली हो क्योंकि जयपाल अपने सीमान्त पर शत्रु राज्यों को स्थापित होते नहीं देखना चाहता था। लवीक लम्बे समय तक गजनी को अपने पास नहीं रख सके।[12] गजनी का तुर्कों के पास जाना भारत के लिये अच्छा नहीं था क्योंकि आगे होने वाले तुर्की आक्रमण का केन्द्र गजनी ही बनने वाला था। जयपाल ने लवीक की सहायता के लिये अपने पुत्र को भेजा था।[13] चर्क नामक स्थान पर 500 तुर्कों ने इस हिन्दू सेना को परास्त कर दिया तथा उन्हें बन्दी बनाकर मार डाला।[14] लवीक के माध्यम से गजनी पर अपना प्रभाव स्थापित करने का जयपाल का यह प्रयास असफल रहा। इस घटना के बाद जयपाल की गजनी विजय का सपना कभी पूरा न हो सका।

977 ई. में गजनी के सिंहासन पर सुबुक्तगीन बैठा। सुबुक्तगीन महत्वाकांक्षी था। प्रारम्भ में वह एक गुलाम था जिसे नासिर हाजी नामक व्यापारी से अल्पत्गीन ने खरीदा था।[15] अपनी योग्यता से सुबुक्तगीन उन्नति करता गया। उसने शीघ्र ही अपने मालिक का विश्वास जीत लिया। सुबुक्तगीन को अमीर उल उमरा की उपाधि दी गई।[16] अल्पत्गीन ने अपनी पुत्री की शादी भी इस गुलाम से की। 994 ई. में कई वर्षों के संघर्ष के बाद उसने खुरासान जीत लिया, यह विजय उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण थी। इस विजय ने उसकी महत्वाकांक्षाओं को और बढ़ा दिया। अब उसका ध्यान भारत विजय की ओर था। इस्लाम का विस्तार व मूर्ति पूजकों का अन्त उसके आक्रमण के लक्ष्य थे। सुबुक्तगीन की सीमाएं अब जयपाल के राज्य से टकरा रही थी। राज्य विस्तार के लिये हिन्दूशाही वंश से संघर्ष अनिवार्य था।

सुबुक्तगीन के आक्रमण की भनक जयपाल को पहले से लग चुकी थी। 986–87 ई. में सुबुक्तगीन के प्रथम बार भारत की सीमा में आक्रमण किया और उनेक किलों व नगरों पर विजय प्राप्त की।[17] इन विजयों के बारे में कहा जाता है कि जिसमें उससे पहले विधर्मियों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहता था और जिसे मुसलमानों के घोड़ों व ऊंटों ने कभी भी पददलित नहीं किया था।[18] इस कथन से स्पष्ट होता है कि जिन सीमान्त राज्यों पर सुबुक्तगीन ने विजय प्राप्त की थी वहां पहली बार इस्लाम का प्रवेश हुआ था। इससे पूर्व ये राज्य पूर्णतः हिन्दूशाही वंश के अधीन थे तथा जयपाल का इन पर नियंत्रण था।

जयपाल की युद्ध तैयारियों के बारे में हमें कुछ जानकारी मुस्लिम स्त्रोतों से प्राप्त होतो है। महमूद गजनवी के दरबारी कवि अबुल कासिम बिन अहमद अंसूरी ने जयपाल के बारे में लिखा है तुमने हिन्दुओं के राजा जयपाल के बारे में सुना है? वह संसार के अन्य राजाओं से ऊंचा है। उसकी सेना आकाश के तारों से भी अधिक अगणित थी। उसके सैनिकों ने अपने हाथ इतने रंजित कर रखे थे कि उनकी तलवारें प्रातःकाल की लालिमा के सदृश्य प्रतीत होती थी।[19] अंसूरी के कथन से स्पष्ट होता है कि जयपाल तत्कालीन भारत के शक्तिशाली हिन्दू राजा थे तथा उनके पास विशाल सेना थी व उन्हें अनेक युद्धों का अनुभव प्राप्त था।

जयपाल को सुबुक्तगीन क आक्रमण की जैसे ही सूचना मिली उन्होंने लभगान व गजनी के मध्य मोर्चा संभाला। दोनों के बीच कई दिनों तक संघर्ष चला। इस संघर्ष में दोनों पक्षों को भारी हानि हुई परन्तु युद्ध का निर्णय नहीं हो सका परन्तु इसी बीच हिन्दू सेना का दुर्भाग्य शुरू हुआ। अचानक मौसम खराब हो गया। भंयकर तूफान व ठण्ड के बीच जयपाल की सेना फस गई। इस नवीन प्राकृतिक आपदा के लिये जयपाल बिलकुल तैयार नहीं थे। तूफान व प्राकृतिक प्रकोप से परेशान जयपाल को सम्भलने के लिये समय की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने सुबुक्तगीन से संधि की प्रार्थना की परन्तु सुबुक्तगीन का सेनापति महमूद इसके लिये तैयार नहीं था वह तुरन्त युद्ध का निर्णय चाहता था। कोधित जयपाल ने सुबुक्तगीन को एक कडा संदेश भेजा। यह सन्देश तत्कालीन भारत के यौद्धाओं की दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रतीक था। जयपाल ने सुबुक्तगीन को लिखा था कि हिन्दू किस प्रकार अपने प्राणों को हथेली पर रखकर युद्ध में कूद पडते हैं, यह तुम देख चुके हो। यदि भेटें तुम अब भी हमारे संधि प्रस्ताव को लूट का सामान, भेटें, हाथी और बन्दी पाने की आशा में अस्वीकार करते हो तो हमारे लिए एक मात्र यही मार्ग रह जाता है कि हम दृढ़ संकल्प करके अपनी सारी सम्पत्ति का नाश कर दें, हाथियों को अन्धा कर दें। अपने बच्चों को अग्नि में फेंक दे और खुद तलवार भाले लेकर एक दूसरे पर आक्रमण कर दें। इसके उपरान्त तुम्हारे लिये केवल पत्थर व कूड़ा करकट, शव और बिखरी हुए अस्थियां शेष रह जाएगी।[20]

जयपाल के उपरात्त कथन से स्पष्ट है कि जयपाल शत्रु के मुकाबले की तैयारी हेतु समय चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि शत्रु उनके प्रस्ताव को उनकी कमजोरी न माने। भारतीय इतिहास का यह प्रथम उदाहरण है जिसमें भारतीय राजा शत्रु को सम्मानपूर्वक कुछ भी नहीं सौंपना चाहता तथा पराजय कि स्थिति में अपना सब कुछ खत्म करना चाहता है।

जयपाल के कड़े सन्देश से आक्रान्ता सन्न रह गया। नवीन आकान्ताओं का उद्देश्य भारतीय प्रदेशों को पददलित करके लूटना होता था जयपाल की चेतावनी से स्पष्ट था कि वो शत्रु को अपने जीते जी कुछ

भी नहीं देंगे। विवश सुबुक्तगीन न संधि स्वीकार करली। संधि की शर्तों के अनुसार जयपाल को 10 लाख दिरहम, 50 हाथी कुछ दुर्ग तथा अपने कुछ रिश्तेदार जमानत के रूप में सुबुक्तगीन को सौंपने थे।[21]

जयपाल जैसे महानायक के लिये यह संधि अपमानजनक थी। संधि के कियान्वयन हेतु सुबुक्तगीन ने अपने कुछ अधिकारियों को जयपाल के साथ भेजा था। जयपाल इस संधि हेतु मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। जयपाल जैसे ही अपने राज्य की सीमा में पहुंचे उन्होंने संधि प्रस्तावों को मानने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं साथ में आए तुर्की अधिकारियों को भी बंदी बना लिया गया।

सबुक्तगीन को यह जयपाल की इस कार्यवाही की जानकारी मिली कार्यवाही तो उसे विश्वास नहीं हुआ।[22] उसने जयपाल को दण्डित करने का निश्चय किया। एक विशाल सेना के साथ वह लमगान की ओर रवाना हुआ। हिन्दूशाही वंश के सीमान्त प्रदेशों के हिन्दुओं पर उसने विजय प्राप्त करके अनेक लोगों को बन्दी बना लिया और मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया।

जयपाल को जब यह मालूम हुआ कि उसके सरदार गिद्ध व बाघों के भोजन बन चुके हैं और उनकी सैनिक शक्ति क्षीण होने लगी है तब उन्होंने एक बार मुसलमानों से युद्ध लड़ने का निश्चय किया।[23]

कुछ इतिहासकारों का यह मत सच प्रतीत नहीं होता कि जयपाल ने सुबुक्तगीन का मुकाबला करने के लिये कालिंजर, कन्नौज तथा अजमेर के शासकों का संघ बनाया था। अगर ऐसा हुआ होता तो सुबुक्तगीन विजयी नहीं होता। सुबुक्तगीन ने आसानी से जयपाल को पराजित किया था जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी भी प्रकार का हिन्दू संघ नहीं बना था। यह सम्भव है कि हिन्दूशाही वंश के पड़ौसी हिन्दू राजाओं ने जयपाल की मदद की हो परन्तु हमें मदद करने वाले राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। विद्याधर महाजन का यह कहना कि जयपाल एक लाख से भी अधिक सेना के साथ युद्ध मैदान में उतरे थे,[24] सत्य प्रतीत नहीं होता। इतना सत्य अवश्य है कि जयपाल ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को युद्ध में झोंका था तथा अधिकतम सेना को युद्ध में उतारा था।

इस बार सुबुक्तगीन ने युद्ध नीति में बदलाव किया वह जानता था कि संख्या बल हिन्दू सेना का अधिक है अतः उसने एक रिर्जव सेना को रख कर शेष सेना को 500–500 की टुकड़ियों में जयपाल की सेना पर आक्रमण हेतु भेजा।[25] उसकी इस नीति का कारण हिन्दू सेना को थकाना व परेशान करना था। छोटी सैनिक टुकड़ी नुकसान भी अधिक पहुंचा सकती थी। अपनी नीति में सबुक्तगीन सफल रहा। हिन्दू सेना थकने लगी। जब सुबुक्तगीन को लगा कि भारतीय सेना लड़ते–लड़ते थकने लगी है तो उसने शेष बची रिर्जव सेना को युद्ध में उतार दिया इस नवीन सेना ने पूरे जोश के साथ जयपाल के सैनिकों पर आक्रमण किया। जयपाल के पास ऐसी कोई रिजर्व सेना नहीं थी जो कि शत्रु का मुकाबला कर सकती।

परिणामस्वरूप हिन्दू सेना भयभीत कुत्तों की तरह दुम दबाकर भागी और राजा ने अपने दूरवर्ती प्रदेशों की उत्तम वस्तुएं इस शर्त पर भेंट करनी स्वीकार की कि विजेता उनके सिर के मध्य के बाल न मुंडवाए।[26]

कुछ इतिहासकारों द्वारा जयपाल की सेना के लिये कहे जाने वाले अपमानजनक अशिष्ट शब्द विजेताओं के बहसीपन व अशिक्षितता के द्योतक कहे जा सकते हैं। प्राचीन भारतीय युद्ध परम्पराओं में पराजित सेना का न तो अपमान किया जाता था और न ही पराजित राजा के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था परन्तु भारत का अब जिन आकान्ताओं से जूझना था उनसे सभ्यता व संस्कृति व नैतिक मूल्यों की आशा करना व्यर्थ था।

इस युद्ध में जयपाल को जन धन का काफी नुकसान उठाना पड़ा। जयपाल की यह भयंकर भूल थी कि उन्होंने शत्रु की शक्ति का अनुमान नहीं लगाया। उन्होंने यह जानने का भी प्रयास नहीं किया कि युद्ध भूमि में शत्रु की युद्ध नीति क्या है? अपनी पूर्ववर्ती पराजयों से कोई सबक नहीं लिया। शत्रु को शत्रु की भाषा में ही जवाब दिया जा सकता था परन्तु ऐसा नहीं हुआ। जयपाल ने जब पूर्ववर्ती संधि की शर्तों को तोड़ा था तभी उन्हें यह अनुमान लगा लेना चाहिये था कि सुबुक्तगीन चुप नहीं बैठेगा व पुनः आक्रमण करेगा। शत्रु के अनुकूल युद्ध की तैयारी न कर पाना जयपाल की भूल थी जिसका परिणाम आगे आने वाले समय को भुगतना था।

इस पराजय के परिणाम पूर्ववर्ती युद्धों की तरह विनाशकारी थे। इस बार सुबुक्तगीन को 200 युद्ध क हाथी व बहुत सी लूट की सामग्री प्राप्त हुई।[27] जयपाल ने असंख्य भेटें दी व सुबुक्तगीन की अधीनता स्वीकार कर ली।[28] सुबुक्तगीन ने पेशावर में 10,000 घुडसवारों के साथ अपना एक अधिकारी नियुक्त किया।[29] स्पष्ट था पेशावर जयपाल के हाथ से निकल चुका था। परन्तु पराजय भी जयपाल के मनोबल को नहीं तोड़ सकी। अथक प्रयासों के बाद भी जयपाल को कुचला नहीं जा सका था। वे अब भी बहुत बड़े भू–भाग के स्वामी थे। जयपाल के अन्दरूनी प्रदेशों में सुबुक्तगीन नहीं घुस पाया था। लूटमार करने के बाद आकान्ता पुनः अपने प्रदेशों की तरफ लौट गया।

सुबुक्तगीन के आक्रमण व भारत की पराजय ने भारत की सैनिक कमजोरियों को तुर्की के समक्ष ला दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि तुर्की आक्रमणों के द्वार भारत में खुल गए। अब तुर्की की हिम्मत भारत पर बार–बार आक्रमण करने की होने लगी।

सुबुक्तगीन का यह आखिरी भारत आक्रमण था। इसके बाद वह अपने राज्य की समस्याओं में उलझ गया। 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु ने जयपाल को थोड़ें समय के लिये सुकून पहुंचाया होगा। यह समय जयपाल के लिये युद्ध की नवीन तैयारी व अपना आत्मालोकन करने का था परन्तु जयपाल ने ऐसा नहीं किया।

सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र इस्माइल गद्दी पर बैठा जिसके भारत आक्रमण की हमें कोई जानकारी नहीं है। इस्माइल के बाद महमूद गजनवी गजनी के सिंहासन पर बैठा उसका शासन काल भारत के लिये अत्यन्त अशुभ सिद्ध हुआ उसने भारत पर लगातार आक्रमण करने का निश्चय किया। 1000 ई. के उसके प्रथम आक्रमण में उसने सम्भवतः उन प्रदेशों को पुनः गजनी राज्य में मिलाने का प्रयास किया जो कि गजनी के हाथों से निकल चुके थे। सम्भवतः उसने जयपाल द्वारा पुनः हस्तगत प्रदेशों को जीता तथा उनके शासक स्वयं नियुक्त किये।[30]

वर्ष 1001 ई. में महमूद अपनी 15000 सेना के साथ भारत की ओर बढ़ा परन्तु हर बात की तरह इस बार भी जयपाल ने उसका रास्ता रोकने का फैसला किया। अनेक आन्तरिक कमजोरियों के बावजूद जयपाल ने विपरीत परिस्थितियों में भी दुश्मन का मुकाबला करने की तैयारी की। महमूद 15 हजार सेना के साथ पेशावर पहुंचा। जयपाल भी अपने 12 हजार घुड़सवारों, 30 हजार पैदल और 300 हाथियों के साथ महमूद का मुकाबला करने के लिये रवाना हुए।[31] चूंकि जयपाल अभी अपनी सहायतार्थ आने वाली सेना की प्रतीक्षा कर रहा था। अतः वह कुछ समय के लिये युद्ध टालना चाहता था।[32] सम्भवतः जयपाल को उतरी भारत के हिन्दू राजाओं से सहयोग की उम्मीद थी किन्तु यह सहायता उपलब्ध होती उससे पहले महमूद ने अवसर का लाभ उठाया। नवम्बर 1001 ई. को महमूद ने जयपाल की सेना पर आक्रमण कर दिया। भंयकर युद्ध में जयपाल पुनः पराजित हुए। 15 सहस्र हिन्दू युद्ध में शहीद हुए। उनके शवों से पृथ्वी को गलीचों की भांति ढककर हिंसक पशुओं और पक्षियों का भोजन बनाया गया।[33] मृतकों के साथ आक्रान्ताओं का यह व्यवहार अत्यन्त क्रूर व पाशविक था। जयपाल अपने पुत्रों, पौत्रों, सम्बन्धियों और कर्मचारियों सहित बन्दी बना लिये गए। इतिहासकार कुतवी ने भारत के महान योद्धा जयपाल के साथ महमूद द्वारा किये गये क्रूर व्यवहार के बारे में लिखा है उन्हें कस कर रस्सों से बांध कर इस प्रकार सुल्तान के समक्ष प्रस्तुत किया गया जैसे कि वे दुष्कर्मी हो और उनकी प्रकृति से अविश्वास के लक्षण प्रतीत होते हों। उन्हें बाधकर नरक में पहुंचाया जावेगा। उनमें से कुछ की भुजाए बलपूर्वक पीठ के साथ बंधी हुई थी। कुछ को गर्दन पर चोट देकर खींचा जा रहा था।[34] सुल्तान जयपाल और उनके सम्बन्धियों को गजनी ले गया जहां उन्हें गुलामों के बाजार में बेचा गया।[35] भारतीय शासक जयपाल को अपमानित करने के हेतु उनकी कीमत मात्र 80 दीनार लगवाई गई। मजबूर, विवश, अपमानित जयपाल पुनः महमूद से संधि करने को विवश हुए। संधि की शर्ते अत्यन्त कठोर थी। जयपाल को 2,50,000 दीनार 25 हाथी महमूद को सौंपने पड़े। संधि की शर्तें पूरी होने तक जयपाल के एक पुत्र को बन्दी बनाए रखा गया।

जयपाल अपने साथ किये गए घोर अपमान को सहन न कर सके। उन्होंने जीते जी आग में भस्म हो जाने का फैसला किया। एक चिता तैयार की गई जिसमें अपने हाथों से जयपाल ने आग लगाई और

फिर स्वयं उसमें प्रवेश किया।[36] भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के महान नायक जयपाल का आत्मदाह सम्भवतः भारतीय इतिहास की प्रथम घटना थी। इससे पूर्व शायद ही किसी राजा का इतना अपमान किया गया हो। जयपाल भारत के उन महान नायकों में थे जिन्हें मृत्यु का भय नहीं था। घोर अपमान व यातनाएं उन्हें अपने धर्म और स्वतंत्रता प्रयत्न से डिगा नहीं पाई थी। महमूद के दरबारी कवि अहमद अंसूरी ने जयपाल के बारे में लिखा है श्तुमने हिन्दुओं के राजा जयपाल का नाम सुना है, वह संसार के अन्य नरेशो से ऊंचा था। उसकी सेना आकाश के तारों से भी अगणित थी। वर्षा की बूंदों आर संसार के कंकर उसके बराबर नहीं थे। उसके सैनिकों ने अपने हाथ इतने रक्त रंजित कर रखते थे कि उनकी तलवारें प्रातःकाल की लालिमा के सदृश्य प्रतीत होती थी। यदि तुमने उसके चमकते हुए भालों को देखा हो तो जो काले धुंए पर लपलपाती हुई ज्वाला के समान प्रतीत होते थे तो तुम कहते कि उसकी सेना नर्क के जंगल में बिखरी हुई है। उसके डर से बुद्धि विदा हो जाती थी और आखें चौधिया जाती थी। खुरासान के स्वामी ने उस सेना को पेशावर के मैदानद में आक्रमण करके तितर–बितर कर दिया।[37]

मंसूरी की कविता जयपाल व उसकी सैन्य क्षमता की सूचना हमें देती है। युद्ध में जयपाल का जिन्दा रहना भारतीय इतिहास के लिये जरूरी था। जिन्दा जयपाल महमूद के लिये ज्यादा खतरनाक थे उनकी मृत्यु एक भीषण क्षति थी किन्तु तात्कालीन युद्ध परम्पराएं किसी भी स्थिति में भारतीय शासकों के लिये उचित नहीं कही जा सकती। इतिहासकार कहते हैं कि हिन्दुओं में ऐसी प्रथा थी कि जो राजा दो बार हार जाता था। उसको राज्य करने योग्य नहीं समझा जाता था। इस प्रथा के अनुसार जयपाल ने अपना राजमुकुट अपने पुत्र को दिया था और चिता पर बैठकर तथा अपने ही हाथ से आग लगाकर वह ज्वालाओं की भट हो गया था।[38] सीमान्त प्रदेशों से तुर्क आक्रमणकारियों को रोकने वाला यह महान शासक स्वयं ही आक्रान्ताओं के रास्ते से हट गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेशन जयपुर 1992, पृष्ठ 37
2. वही–
3. वही–
4. वही–
5. अल उल हिकायत, मौहम्मद उर्फी, अनु. इलियट हाउस, खण्ड–2 पृष्ठ 127
6. www-India Iddoys-com शाही वंश का इतिहास क्या था, सुमन, अगस्त 27, 2021
7. www-India Iddoys-com शाहीवंश
8. www-India Iddoys-com शाहीवंश

9. https-hi-in-wikiendia-org>wiki
10. वहीं–
11. सल्तनत काल म हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 39
12. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 39
13. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 39
14. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 54
15. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 39
16. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, वही पृष्ठ 39
17. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 39
18. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 39
19. भारत का इतिहास, इलियट डानसन, परिशिष्ट 396, खण्ड चतुर्थ
20. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 49
21. उत्वी, तारीख–ए–यामिनी, अनु श्रीराम शर्मा, लाहौर, पृष्ठ 127–129
22. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 41
23. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41 24. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41
25. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41 26. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41
27. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41
28. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41
29. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 41
30. मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, ईश्वरी प्रसाद पृष्ठ 45
31. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 45
32. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 43
33. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 43
34. मध्यकालीन भारत, विद्याधर महाजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 1998, पृष्ठ 43.
35. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 43
36. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 43

37. सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध, अशोक कुमार सिंह, पब्लिकेश, स्कीम, जयपुर 1992, पृष्ठ 43
38. भारतीय इतिहास का पूर्व मध्ययुग, सत्यकेतु विद्यालंकर, पृष्ठ 160